

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2023; 5(11): 01-05
Received: 03-09-2023
Accepted: 07-10-2023

डॉ. सागर कुमार

संस्कृत विभाग, कविकुलगुरु
कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय,
रामटेक, महाराष्ट्र, भारत

निघण्टुकोष का स्वरूप एवं कर्ता की अवधारणा

डॉ. सागर कुमार

प्रस्तावना

निघण्टुकोष वैदिक शब्दकोश के रूप में अभिज्ञात है। जो कि वेदों के मन्त्रों की व्याख्या में अत्यन्त सहायक माना जाता है। जहाँ यह मन्त्रों के गूढ रहस्य को प्रकट करता वही इसके कर्ता के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ दृष्टिगोचर होती है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कर्ता के विषय में ज्ञान प्राप्त करना क्यों आवश्यक है? यतो हि यथार्थवक्ता से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है अतः प्रस्तुत शोधपत्र निघण्टुकोष के कर्ता का उद्घाटन करता है।

निघण्टुकोष का परिचय - वैदिक निघण्टुकोष में पाँच अध्याय हैं, जिनमें कुल एक हजार सात सौ तिहत्तर (१७७३) शब्द परिगणित है। प्रथम तीन अध्यायों की रचना एक समान है। जिनमें एक-एक अर्थ के वाचन कुछ शब्द संकलित है। वे शब्द समूह एक खण्ड कहलाते हैं, इनमें से कुछ खण्डों में नामपद और कुछ में आख्यात पद है। प्रथम अध्याय में सत्रह खण्ड हैं। निघण्टु के प्रथम अध्याय की व्याख्या निरुक्त नैघण्टुक काण्ड के द्वितीय अध्याय में की गयी है। द्वितीय अध्याय में बाईस खण्ड हैं। इनमें पन्द्रह खण्डों में नामपदों का परिगणन किया गया है, तथा सात खण्डों में आख्यात पदों का, इसकी व्याख्या निरुक्त के द्वितीय अध्याय के प्रथम तथा द्वितीय पाद में की गयी है।

तृतीय अध्याय में तीस खण्ड हैं जिनमें अठारह खण्ड नामपद एवं अन्य आठ खण्डों में आख्यात पदों का परिगणन किया गया है और शेष सर्वनाम पद है। नैघण्टुक काण्ड के तृतीय और चतुर्थ पाद में नामपदों की व्याख्या की गई है। इस प्रकार निघण्टु का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

निघण्टुकोष के प्रवक्ता

कुछ विद्वान् निघण्टु को यास्ककृत मानने के पक्ष में हैं, जबकि दूसरा पक्ष निघण्टु को यास्क से प्राचीन लोगों की कृति मानते हैं।

प्रथम पक्ष- निघण्टु यास्ककृत-

निघण्टु यास्ककृत है, इस विषय में निम्न मत प्रस्तुत किये जा सकते हैं :-

1. आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थान भेद नामक ग्रन्थ में यास्क विरचित निघण्टु को पञ्चाध्यायात्मक बताया है। वे इस विषय में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते हैं।¹
2. ऋग्वेद संहिता के भाष्यकार आचार्य वेंकट माधव ने भी निघण्टु को यास्ककृत माना है। लेकिन इन्होंने भी इस विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया है।²
3. निरुक्त के प्रारम्भ में “समाम्नाय सामम्नातः सः व्याख्यातव्यः।³ सामाम्नाय का सामम्नात किया जा चुका है और अब उसकी व्याख्या करनी है यह पाठ पठित है। इससे यह सूचित होता है कि सामाम्नाय का सामम्नात और व्याख्यात करने वाला व्यक्ति एक ही है। यदि निघण्टु की रचना किसी अन्य ने की होती तो “समाम्नाय व्याख्यातव्यः यह पाठ किया जाना उचित होता। लेकिन यास्क पठित वक्तव्य से ऐसा आभास होता है कि वे पहले निघण्टु का सामाम्नात कर चुके हैं और अब उसका व्याख्यान करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं।
4. निरुक्त में आचार्य यास्क निम्न वक्तव्य देते हैं :- “अथ उत अभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति इन्द्राय

Corresponding Author:

डॉ. सागर कुमार

संस्कृत विभाग, कविकुलगुरु
कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय,
रामटेक, महाराष्ट्र, भारत

वृत्रघ्न, इन्द्राय वृत्रतुरे, इन्द्राय अंहोमुच इति तान्येय्येके समामनन्ति। भूयांसि तु समाम्नात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात्प्राधान्यस्तुति तत् समामने”।⁴ ब्राह्मण ग्रन्थ भिन्न-भिन्न विशेषणों से संयुक्त करके किसी के लिए हवि का विधान करते हैं जैसे – इन्द्राय वृत्रघ्न एकादशं कपालं निर्वपेत्। इसी प्रकार “इन्द्रायांहोमुच एकादशं कपालं निर्वपेत्।⁵ के द्वारा वृत्रघ्न वृत्रतुर और अंहोमुच इन्द्र के लिए हवि का विधान किया गया है। ऐसे प्रयोगों को देखकर कतिपय निरुक्तकार वृत्रघ्न, वृत्रतुर और अंहोमुच आदि देवता वाचक विशेषण पदों को समाम्नाय में परिगणित करते हैं, लेकिन इस प्रकार परिगणन करने पर भी बहुत बड़ी संख्या में देवतावाचक पद अपरिगणित रह जाते हैं, क्योंकि विशेषणवाचक शब्द तो बहुत अधिक हैं। यदि उन सबकी गणना प्रारम्भ कर दी जाये तो एक बृहत् कोष बन जायेगा। इसीलिए प्रधानरूप से स्तुत देवतावाचक पदों का मैं (यास्क) परिगणन करता हूँ। कहने का तात्पर्य है कि यास्क विशेष्यवाचक पदों का परिगणन करने के पक्ष में है। यदि विशेषण वाचक पदों का भी परिगणन किया जाये। इसकी संख्या बहुत अधिक हो जायेगी। जिन्होंने ऐसा करने का प्रयास किया है वे भी सम्पूर्ण देवता वाचक पदों का परिगणन करने में सफल नहीं हुए हैं और इनके इस प्रयास के बाद भी अनेक देवता वाचक पद अपरिगणित रह गये हैं।

आगे अपने कथन को और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं :- “अथोतकर्मभिः ऋषिर्देवता स्तौति वृत्रहा पुरन्दर इति। तान्यप्येके समामनन्ति। भूयांसि तु समाम्नात्। व्यञ्जनमात्रं तु तत् तस्याभिधानस्य भवति यथा ब्राह्मणाय बुभुक्षितायौदनं देहि स्नातायानुलेपनं पिपासते पानीयमिति।⁶ कि वेद भिन्न-भिन्न कर्मों से किसी देवता की स्तुति करता है जैसे इन्द्र की वृत्रहा, पुरन्दर आदि से। वृत्र का वध करने से वह “वृत्रहन्” शत्रु नगरों को ध्वस्त करने से वह पुरन्दर कहलाता है। भिन्न-भिन्न विशेषणों से युक्त देवताओं को देखकर कतिपय निघण्टुकार भिन्न मानकर उन शब्दों का अपने शास्त्र में समाम्नात करते हैं परन्तु ऐसे देवतापद परिगणित देवतापदों की अपेक्षा बहुत अधिक है”। वृत्रहा पुरन्दर आदि शब्द उस इन्द्र के व्यञ्जक अर्थात् विशेषणमात्र हैं। जिस प्रकार कोई कहे कि ब्राह्मण भूखा हो तो चावल दो स्नान किया हुआ हो तो चन्दन का लेप प्रदान करो और यदि वह प्यासा हो तो उसे जल देना चाहिये। यहाँ अवस्था भेद से एक ही ब्राह्मण बुभुक्षित, स्नात और पिपासित कहा गया है वस्तुतः ब्राह्मण अनेक नहीं है। इसी प्रकार देवता भी विशेषण भेद से एक ही रहता है, अन्य नहीं होता है।

5. निरुक्त के अन्य स्थान पर यास्क कहते हैं: - “इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं वेदाङ्गानि च”।⁷

साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों ने इस ग्रन्थ का समाम्नात किया और वेद तथा वेदाङ्गों का भी सम्मान किया है। उक्त वक्तव्य में यास्क ने वेद और वेदाङ्गों के समान निघण्टु के ग्रन्थन किया जाने का उल्लेख किया है।

6. पं शिवनारायण शास्त्री का मत है कि हमें जो विचार तथा सूचनायें उपलब्ध हैं उनके आधार पर निरुक्त के उपजीव्य निघण्टु को यास्क से भिन्न किसी व्यक्ति की अथवा पीढियों की कृति बतलाना दुराग्रह ही होगा।

यहाँ पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि यास्क जैसे प्रौढ तथा वैज्ञानिक बुद्धिवाले आचार्य से हमें इतने हीने कोटी के कोष के सङ्कलन की आशा नहीं थी। अतः निघण्टु यास्ककृत होने में सन्देह होता है।⁸ इसमें हमारा उत्तर यह है कि यास्क के समय में विद्यमान कोश कला के विकसित न होने का ही दोष है, यास्क का नहीं। यदि यह निघण्टु अन्यकृत होता तब हम यहीं कहते हैं कि इस लक्ष्य कोश पर व्याख्या लिखने की बजाय यास्क ने अपना कोश क्यों नहीं बनाया? अतः हमारा यहाँ विचार है कि यास्क ने इस कोश ग्रन्थ का सङ्कलन किया है। उनके पूर्व के कोशों और भी गडबडियाँ रही होगी। यास्क ने तो उन गडबडियों का निर्देश भी किया है, कुछ कोशकारों ने अपने कोशों से देवताओं के पर्यायों तथा विश्लेषणों का भी समाम्नाय किया हुआ था। जिससे उनका आकार तो बृहत् हो गया किन्तु वो जमाने के आगे टिक नहीं पायें। यास्क ने उन दोषों से अपने निघण्टु को बचाया है। यास्क ने न केवल उन पुराने निघण्टुओं में उपलब्ध दोषों को छोड़ा अपितु उनके कई गुणों को निघण्टु अपनाया भी। उदाहरण है : - शाकपूणि के निघण्टु में किसी प्रयोजन से शब्दों अथवा शब्दसमूहों को रखना गुण था। यास्क ने भी यथाशक्य इसकी ओर ध्यान दिया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने निघण्टु में कई नई बातें भी कीं। उदाहरण स्वरूप उनका दैवतकाण्ड पूर्णतः वैज्ञानिक तथा सुगठित है। यही कारण शौनक ने बृहद्देवता में तथा कात्यायन ने सर्वानुक्रमणिका में अन्य प्रसिद्ध आचार्य को छोड़कर यास्क को अधिक सम्मान दिया है। अतः हम यही कह सकते हैं कि आज बीसवीं सदी में निघण्टु कैसा भी लगे, अपने समय में वह धुरन्धर ग्रन्थ था। परम्परा ने उसे पूरा सम्मान दिया। हमसे भी उसे आशा एवं अपेक्षा है।⁹

द्वितीयपक्ष – निघण्टु यास्क से पूर्व रचना निघण्टु यास्क से पूर्व किन्हीं आचार्यों के द्वारा समाम्नात है, इस विषय में निम्न प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं:-

निरुक्त के उपलब्ध टीकाकारों में आचार्य दुर्गा का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने निरुक्तवृत्ति में अनेक स्थानों पर निघण्टु के रचयिता पर प्रश्न किये हैं। उनमें से निम्नलिखित स्थलों को विचारार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है:-

1. आचार्य यास्क ने निघण्टु तथा अन्य वैदिक वाङ्मय के गठन के सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य दिया है: “उपदेशाय ग्लायन्तेऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः वेदं वेदाङ्गानि च”¹⁰ इस पर आचार्य दुर्गा कहते हैं:- इमं ग्रन्थं गवादिदेवपत्न्यन्तं समाम्नातवन्तः”।¹¹ इससे यह आशय ग्रहण किया जा सकता है कि साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों की अपेक्षा अवर विद्वानों ने इस निघण्टु कोष का समाम्नात किया।

2. आचार्य दुर्ग निरुक्तवृत्ति के प्रारम्भ में निघण्टु की सीमा तथा उसके सङ्ग्रह कर्ताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं :- “इयं च द्वादशाध्यायी भाष्यविस्तरः। तस्या इदमादिवाक्यं “सामान्याः समाम्नातः इति। गवादिदेवपत्न्यन्तः शब्दसमुदाय उच्यते। स च ऋषिभिर्मन्त्रार्थपरिज्ञानायोदाहरणामृतः पञ्चाध्यायीशास्त्रसङ्ग्रहभावनैकस्मिन्नध्याये ग्रन्थीकृत इत्यर्थः”¹² कि यह द्वादश अध्याय वाले निरुक्तभाष्य का विस्तार है। उस भाष्य का प्रथम वाक्य सामान्याः समाम्नातः है। इस निरुक्त में “गो” से लेकर देवपत्नी पर्यन्त शब्दसमुदाय का विवेचन किया गया है। उक्त गो से प्रारम्भ होकर देवपत्नी पर्यन्त चलने वाले कोष को ऋषियों ने मन्त्रार्थ के परिज्ञान के लिये पञ्चाध्यायात्मक कोष में ग्रथित किया है। उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि दुर्ग के मत में निघण्टु यास्क से प्राचीन ऋषियों की रचना है।
3. निरुक्त के प्राचीन व्याख्याकार स्कन्दमहेश्वर स्वामी भी निघण्टु को यास्क से प्राचीन आचार्यों की कृति मानते हैं : - सामान्याशब्देनात्र गवादिदेवपत्न्यन्तः शब्दसमूह उच्यते, न वेदः। समाम्नातः = सम्भूयाभिमुखेनाम्नातः अभ्यस्तः। ग्रन्थीकृत्य पूर्वाचार्यैः पठित इत्यर्थः। एते गवादयः शब्दाः पूर्वाचार्यैरुच्यन्ते।¹³ कि यहाँ गो से प्रारम्भ होकर “देवपत्नी” पर्यन्त चलनेवाला शब्दसमूह कहा जाता है, न कि वेदा उक्त कोष को पूर्वाचार्यों ने ग्रथित करके पढा है। ये गवादि शब्द पूर्वाचार्यों के द्वारा कहे गये हैं। इसी प्रकार में कुछ आगे जाकर वे पुनः कहते हैं “अयं संज्ञात्वकथनेन तन्निर्वचनप्रदर्शनेन च परिहीयते व्याख्यात एवायं पूर्वाचार्यैः। तैर्ह्यस्य निघण्टुरिति संज्ञा कृता”¹⁴ कि निघण्टु संज्ञा तथा उसके निर्वचन प्रदर्शन से ज्ञात होता है कि पूर्वाचार्यों ने इसका व्याख्यान किया है और उन्होंने इसकी निघण्टु संज्ञा भी की है। उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि निघण्टु यह नामकरण यास्क द्वारा नामकरण नहीं है। यह संज्ञा यास्क पूर्व आचार्यों द्वारा प्रदान की गयी है। इस प्रकार संज्ञा (निघण्टु) और संज्ञी (कोष) दोनों में यास्क का योगदान नहीं है। ये दोनों यास्क को अपने से पूर्व ऋषियों से प्राप्त हुए। आचार्य दुर्ग का उपर्युक्त तर्क निश्चितरूप से सोचने को विवश करता है कि उक्त निघण्टुकोष के यास्ककृत होने की सम्भावना क्षीण है।
4. पं. सत्यव्रत समाश्रमी “सामान्या शब्दों को पवित्र और अनादि मानते हैं। उनके अनुसार वाङ्मय वाचक मानकर निघण्टु के लिए “सामान्या” शब्द का प्रयोग अनुचित है।¹⁵ वे निरुक्त “इमं ग्रन्थं सामानिसिषुः” वाक्य से आचार्य दुर्ग के समान निघण्टु अर्थ ग्रहण करते हैं तथा उन्हीं के समान वे निघण्टु को यास्क से प्राचीन किसी आचार्य की कृति मानना उचित समझते हैं। इस विषय में वे महाभारत के मोक्षधर्मपर्व के एक श्लोक को प्रमाणरूप उद्धृत करते हैं।¹⁶
- पं. सत्यव्रत समाश्रमी के इस कथन से कि “सामान्या”¹⁷ शब्द पवित्र और अनादि वाङ्मय का वाचक है, सहमत होना कुछ कठिन है। आचार्य यास्क ने सामान्या और उसके मूल में निहित ‘सम्+आ+म्ना’ धातु का प्रयोग अनेकशः किया है।¹⁸ उक्त शब्द

- का प्रयोग यास्क ने सभी स्थानों पर सर्वत्र परिगणन, गठन, ग्रन्थन आदि अर्थों में किया है। अतः प्रयोग के आधार पर सामान्या शब्द को पवित्र और अनादि वाङ्मय का वाचक सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग सामान्य रूप से साहित्य के गठन के लिए होता रहा है।
5. श्री आर. डी. कर्मकर का मत है कि निघण्टु अनेक आचार्यों द्वारा रचित है। वे इस सम्बन्ध में निम्न तर्क देते हैं –
- (क) निघण्टु के प्रथम तीन अध्याय के रचयिता से चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड का रचयिता भिन्न है। इसका कारण है कि इसमें कुछ शब्द दिये गये हैं जो पिछले तीन अध्याय में आ चुके हैं। जैसे अन्धः (२.७.१, ४.२.६) वराहः (१.१०.१३- ४.२.२१) स्वसराणि (१.९.५- ४.२.२२) सिनम् (२.७.८ – ४.२.८) वयुनम् (३.१.१० ४.२.४८)। इससे स्पष्ट है कि यदि निघण्टु ४.२ खण्ड का रचयिता निघण्टु के पूर्व तीन अध्यायों से परिचित होता, तो उनको दुहराता नहीं।¹⁹ आचार्य दुर्ग का भी ध्यान निघण्टु में हुए इस पौनरुक्त पर गया है। वे इस विषय में कहते हैं:- “पठितमपि चान्नामसु (निघ. २.७)। अनेकार्थत्वात्तु सन्दिह्यत इत्येष निगम उपात्तः”²⁰ कि अन्धः पद अन्ननाम में पठित है। अनेकार्थक होने से इस पद में सन्देह होता है। इसी प्रकार वे सिनम पद के विवेचन में कहते हैं :- व्यभिचारित्वादभिधानानां धन्व सिनमित्येवादीनि स्वे स्वेऽभिधानवर्गे पठितान्यपि सन्ति नैघण्टुके प्रकरणे,सामान्यातायेतस्मिन्नैकपदिके प्रकरणेऽनवगतसंस्काराभिप्रायेण, कानिचिदनेकार्थाभिप्रायेण”²¹ कि नैघण्टुक प्रकरण में पर्यायवाचीत्व की दृष्टि से शब्द अपने – अपने वर्ग से पठित है, जबकि एकपदिक प्रकरण में अनवगतसंस्कार (प्रकृति-प्रत्यय की अस्पष्टता) तथा अनेकार्थकता के कारण उनका परिगणन हुआ है। इस प्रकार आचार्य दुर्ग का मन्तव्य स्पष्ट है कि नैघण्टुक शब्दों के परिगणन का आधार पर्यायवाचित्व है, जबकि एकपदिक (४.२ खण्ड) प्रकरण में परिगणन करने का कारण शब्दों क्रम अनेकार्थकता तथा उनका स्वर-संस्कार की दृष्टि से असमर्थ होना है। इसलिये एक शब्द भिन्न कारणों से एक से अधिक स्थान पर परिगणित हो गया है। अतः कर्मकर का मत उचित प्रतीत नहीं होता।
- (ख) श्री आर. डी. कर्मकर आगे कहते हैं कि निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में भी प्रथम और तृतीय खण्ड के रचयिता पृथक्-पृथक् हैं। इस अध्याय के खण्ड में मन्त्र में एक साथ आने वाले कतिपय शब्दयुगलों का परिगणन हुआ है। इस प्रकार के दो शब्दयुगल प्रथम खण्ड में जैसे – विद्रधे, द्रुपदे और दावने, अकूपारस्य तथा द्वितीय खण्ड में वाहिष्ठः, दूतः²² तथा कुटस्य चर्षणिः हैं।²³ इनमें से प्रथम शब्दयुगल की मन्त्रगत सन्धि को विगृहित किया है, जबकि दूसरा युगल यथाश्रुतरूप में पठित है। तृतीय खण्ड में निम्न चार युगल हैं, जिनमें में से दो अनवायम्, किमिदने²⁴ और चनः, पचता²⁵ मन्त्र में पठित विभक्त्यन्त है, किन्तु दो श्रुष्टी,पुरन्धिः²⁶ तथा सदान्वे, शिरिम्बिष्ठः²⁷ की मन्त्रगत विभक्तियों को परिवर्तित कर दिया गया है। यदि दावने, अकूपारस्य को मन्त्र में पठित विभक्ति के अनुरूप रखा जा सकता है तो फिर पुरन्धिम्, शिरिम्बिष्ठस्य को क्यों नहीं? इससे विदित होता है कि तृतीय खण्ड और प्रथम खण्ड के रचयिता एक व्यक्ति नहीं है।²⁸

उपर्युक्त आचार्य कर्मकर के कथन का आशय यह है कि निघण्टु की रचना शैली कोई आदर्श रचना शैली नहीं है। इसमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है। जो सम्भावना कर्मकर महोदय ने प्रकट की है, उसे सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह भी सम्भव है कि निघण्टु किसी एक व्यक्ति की रचना हो, परन्तु जिस प्रकार प्रथम आविष्कृत वस्तु में कल्पना अपने आदर्शरूप न होकर न्यूनतम रह जाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार निघण्टु कोष विधा का प्रथम प्रतिरूप है। इससे पूर्व किसी कोष के विद्यमान न होने से निदर्शन के अभाव में उक्त प्रकार की न्यूनताओं का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

६. डॉ. लक्ष्मणस्वरूप भी निघण्टु को एक व्यक्ति की रचना न मानकर पूरी पीढी या सम्भवतः अनेक पीढियों के संयुक्त का प्रयास मानते हैं।²⁹ श्री वैजनाथ काशीनाथ राजवाडे भी निघण्टु को यास्क से प्राचीन तथा अनेक आचार्योंकी रचना मानते हैं।³⁰ श्री विश्वुपाद भट्टाचार्य निघण्टुकार के विषय में अपने विवेचन का उपसंहार करते हुए अपने पक्ष के समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं: -

(क) प्रथम यह निघण्टु, जिस सङ्कलन कर्ता के नाम से प्रसिद्ध है, यह केवल अयथार्थ नाम है। जैसाकि प्रोफेसर स्कॉल्ड ने प्रदर्शित किया है कि निघण्टु यह नामकरण निघण्टु के प्रथम काण्ड का है, जिसमें पर्यायवाची पद हैं। लेकिन बाद में यह नामकरण अन्त के दोनों (नैगम एवं दैवत) काण्डों के लिये प्रयुक्त होने लगा। यह तथ्य प्रथम काण्ड के नैघण्टक नामकरण से सिद्ध हो जाता है।

(ख) इस विषय में द्वितीय हेतु यह है कि जब यास्क यह कहते हैं, “तमिमं समाम्नायं निघण्ट्व इत्याचक्षते” “तत् ऐकपदिकमित्याचक्षते” या “देवतमित्याचक्षते”। यहाँ यास्क द्वारा निरुक्त के प्राचीन आचार्यों की परम्परा का उल्लेख कर रहे हैं।

(ग) इस विषय में तृतीय हेतु यह है कि यास्क के अपने वक्तव्य यह सिद्ध करते हैं कि निघण्टु स्वयं उनकी रचना है।

(घ) इस विषय में चतुर्थ हेतु यह है कि यास्क से पूर्व निघण्टु विद्यमान थे, उन्ही के उद्धरण यास्क के निरुक्त में पाये जाते हैं।

(ङ) इस विषय में पञ्चम हेतु यह है कि निघण्टु में कुछ निश्चित शब्दों की पुनरुक्ति यह सिद्ध नहीं करती कि निघण्टु की रचना में एक से अधिक आचार्यों का योगदान है।

(च) इस विषय में अन्तिम हेतु यह है कि प्रत्येक निघण्टु, जो कोश का एक सामान्य नाम है, यास्क से पूर्व उसमें तीन काण्ड थे- नैघण्टक, ऐकपदिक, या नैगम तथा दैवत काण्ड। यास्क नवीन वर्गीकरण करते, इसके स्थान पर उन्होंने केवल अपने समय की उक्त विभाजन (काण्ड) परम्परा का पालन किया।

इस प्रकार विस्तृत विवेचना के उपरान्त श्री विश्वुपाद भट्टाचार्य दो प्रकार के निष्कर्ष ग्रहण करने के लिये विविध हैं। वे दोनों सम्भावनायें मानकर चल रहे हैं प्रथम यह यास्क द्वारा सङ्कलित कोष है। द्वितीय यास्कपूर्व अनेक आचार्यों का इसमें योगदान है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुछ विद्वान् निघण्टु को यास्क की रचना मानते हैं, परन्तु इस विषय में विवाद बहुत अधिक है कि निघण्टु

यास्ककृत है या किसी अन्य द्वारा सङ्गृहीत है, इन दोनों पक्षों के विषय में पर्याप्त प्रमाण मिल जाते हैं, इसलिये निःसन्धिग्रहण से यह नहीं कहा जा सकता कि निघण्टु यास्ककृत ही है? तथापि यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि निघण्टु यास्क से प्राचीन आचार्यों की रचना हो। इस विषय में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं: -

1. निघण्टु के परिगणन में ऐसे बहुत से शब्द छूट गये हैं, जो यास्क की दृष्टि में ऐकपदिक है और इसी कारण वे उन शब्दों का निर्वचन करने के लिये प्रस्तुत होते हैं, पर उनका निघण्टु में परिगणन नहीं हुआ है। जैसे – जार, जामातु, मातरिश्वन्, मुहूर्त्त, शल्मलि, शरीर, श्मशान, शरद्, हस्त इत्यादि।
2. दूसरा कारण यह है कि ऐसे बहुत से शब्द हैं कि जिन अर्थों में वे परिगणित हैं, उस अर्थ में यास्क उनका निर्वचन नहीं करते, लेकिन उनसे भिन्न अर्थों उनका निर्वचन करते हैं। जैसे निघण्टु के व्याख्याकार आचार्य यास्क ने ‘स्वः’ पद के आदित्य और अन्तरिक्षपरक अर्थ सिद्ध करने वाले अनेक निर्वचन करते हैं, परन्तु निघण्टु³¹ में परिगणित उदकपरक अर्थ सिद्ध करने वाला भी निर्वचन प्रस्तुत नहीं किया है। इस आधार पर यह निष्कर्ष ग्रहण किया जा सकता है कि यास्क निघण्टुकोष के कर्ता नहीं है। इसका कारण यह है कि शब्द के जिस अर्थ से वे असहमत है, उसकी वे उपेक्षा कर जाते हैं। यदि निघण्टु यास्ककृत होता तो यास्क निघण्टु का संशोधन कर सकते थे और जिस रूप में वे निघण्टु को देखना चाह रहे हैं, उन अर्थों में तत्तत् शब्दों को सामान्य अवश्य करते।
3. तीसरा कारण है यह है कि यास्क के निरुक्त का मुख्य उद्देश्य वेद का विश्लेषण करना है और निघण्टु के पाँचवे अध्याय में देवतापदों का अपरिगणन किया गया है, परन्तु वह सङ्ग्रह वेद में आये सम्पूर्ण देवताओं का सङ्ग्रह नहीं है। उदारणार्थ – आत्मा, सीता, रोग आदि अनेक देवताओं का परिगणन करना निघण्टुकार भूल गये हैं। यदि निघण्टु यास्ककृत होता तो सभी ऐकपदिक तथा समस्त देवता वाचक शब्दों का परिगणन अवश्य करते।
4. इसके अतिरिक्त यदि निघण्टु यास्क रचित होता तो निरुक्त के प्राचीन वृत्तिकार आचार्य दुर्गा तथा स्कन्दस्वामी अवश्य उल्लेख करते। वे स्पष्टरूप से कहते हैं कि उक्त निघण्टु का प्रणयन आचार्यों (ऋषियों) के द्वारा किया गया है। उक्त तथ्य यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि निघण्टु यास्ककृत नहीं है।
5. यास्क ने ऐसी अनेक धातुओं का परिगणन किया है, जो निघण्टुकोष में सामान्य नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों पक्षों के तर्कों को ध्यान में रखकर किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। फिर भी, निघण्टु की यास्ककृत होने की सम्भवना क्षीण है। यास्क जिस प्रकार की प्रतिभा के धनी हैं, उस प्रकार का कौशल निघण्टुकोष के गठन में दिखलायी नहीं पडता है।

सन्दर्भ

1. प्रस्थानभेदः “तत्रापि निघण्टु संज्ञकः पञ्चाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केन कृतः।”
2. ऋक्. भाष्या।
3. निरु. १.१ तत्रैक विंशति नामनि कश्चित् गौर्बिभर्तीति पृथिवी माहा तस्य हि यास्क पठितानि एकविंशतिर्नामानि।
4. निरु. ७.३
5. मै. सं. २.२.११
6. निरु. ७.१३
7. निरुक्त १.२०
8. नि. पू.मि. भू. पृ. २९
9. निरुक्त पूर्वमीमांसा, भूमिका पृ. ३०
10. निरु. १.२०
11. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति
12. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति, १.१ पृ. ५
13. स्कन्द, निरुक्तवृत्ति भा. १ पृ. ०४
14. निरुक्तालोचन, पृ. २२. अद्ययुगेन कृतस्य ग्रन्थस्य कथं भवेत् समानायत्वम् सायणमते हि निघण्टोः समाम्नायत्वेनादित्वम्। पृ. २५ समाम्नायत्वं तु सिद्धमेवास्य निघण्टोः समाम्निषुरिति क्रियादर्शनात्। वेदतुल्यत्वसमाम्नायत्वयोश्च नास्ति कार्यकृतो विशेषः।
15. निरु. १.२०
16. म. भा. , मोक्षधर्म ३४२. ८६--८७
17. निरुक्तालोचन एवं चैतस्माच्छ्रुतेर्निघण्टोः खलु ब्राह्मणग्रन्थेभ्योऽपि प्रागाम्नायत्वं गम्यते तादृशसमाम्नायत्वमूलकमतिपुराकालिकत्वं च सुवक्तव्यमेव”।
18. निरु. १.१ “समाम्नायः समाम्नातः”। निरु. १.२ इमं ग्रन्थं समाम्निषुः”। निरु. ७.१३
19. विश्वुपा भट्टाचार्य, यास्काज निरुक्त, पृ. २७-२८
20. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति, ५.१ पृ. ३८९
21. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति, ५.५
22. निघ. ४.१८-१९
23. निघ. ४.२.२-३
24. निघ. ४.२.७०-७१
25. निघ. ४.३.४३.४४
26. निघ. ४.३.५०-५१
27. निघ. ४.३.११९-१२०
28. यास्काज निरुक्त पृ. २८-३०
29. निघण्टु और निरुक्त, भूमिका, पृ. १४
30. यास्काज निरुक्त पृ. २१५
31. निघ. १.१२.८६